बेंच पर बूढ़े

हिन्दी ADDA

मृदुला गर्ग

बेंच पर बूढ़े

बूढ़े पार्क की बेंच पर बैठें या आई.आई.सी. के लाउंज में, खास फर्क नहीं है, उत्तर-दक्षिण दिल्ली के सरहदी लोदी गार्डन की बेंच पर बैठा, नितिन सोच रहा था। ये भी सेवा निवृत्त हैं, वे भी। सेवा निवृत्त, क्या आनबान वाला शब्द है जैसे बंदा सारी उम्र सेवा करके, अपनी मर्जी से निवृत्त हुआ हो। अंग्रेजी पर्याय "रिटायर" में वह शान नहीं झलकती, बल्कि गाड़ी के "रीट्रीडड टायर" की याद हो आती है। पर शब्द से क्या होता

है, अर्थ दोनों का एक है, घर से निष्कासित। जैसे नितिन। कभी नितिन सोलंकी... हाल में सेवा निवृत्त हो मात्र नितिन या वह भी नहीं, केवल पापा या दादा। कितनी चिढ़ है उसे पापा शब्द से। अजब निरर्थक संबोधन है। जैसे गार्डन या पार्क। अरे भई, बगीचा या बाग कहते जबान गलती है क्या? कहो तो उसके पोते-पोती समझें ही नहीं। सब कहते हैं न, बड़े-बड़े हिंदी के विद्वान भी, हिंदी बदलेगी तो चलेगी! यानी अंग्रेजी शब्दों का घालमेल करके बोलो तो लँगड़ा कर चल लेगी कुछ देर और। नितिन की जिंदगी खत्म होने तक, जरूर। ठीक है, वह नाहक अपना भेजा क्यों खराब कर रहा है, खासी बढ़िया अंग्रेजी जानता है। जो नहीं जानते, उद्यान और उपवन में फर्क किए बगैर, किसी भी मैदान को पार्क या गार्डन पुकारते हैं। उसे भी उनकी चाल चलना पड़ता है। सो पेड़-फूलों से लदा इतना बड़ा मैदान हुआ गार्डन और मौहल्लों की नन्हीं-सी खुली जगह हुई पार्क! हुआ करे, वह अपना भेजा फ्राई क्यों कर रहा है? और कुछ फ्राई रहा जो नहीं जिंदगी में। "फ्राई" उसे इस उम्र में चलता नहीं। सच कहें तो खूब चलता है उसे; उसकी बहू मान्या मानती है, नहीं चलना चाहिए। सो रोज घोड़े के खाने लायक भूसा, चलो जई सही, औटा कर धर देती है सामने। कहती है, "ओट्स" हेल्थ फूड है। जरूर होगा। घोड़े खाते हैं, कभी किसी घोड़े को दिल का दौरा पड़ते सुना? स्वाद बदलने को वह हँसोड़ वाक्य सोचता है, कहता नहीं। असल बात कौन नहीं जानता, बाजार से डिब्बा-बंद आता है, घोल घोटने में पाँच क्षण नहीं लगते। जिसे पकाने में मेहनत न लगे, वह बनाने वाले की सेहत के लिए मुफीद हुआ न? पता नहीं यह बेस्वाद खाना सिर्फ बूढ़ों के लिए सही क्यों है? जवानों और बच्चों को चलता है, दुकान से आया पित्जा और फ्राईड प्रौन। कहते हैं, उनके खेलने-खाने के दिन हैं। हाल में सेवा निवृत्त हुए अधेड़ के क्या करने के दिन हैं, बहू और उसकी रसोईदारिन की सेहत बनाने के?

बेचारी उसकी भली पत्नी भागवती। भली थी तभी उसके सेवा निवृत्त होने से पहले, जीवन निवृत्त हो गई। पुरानी चाल की औरत थी, ध्रुव के पैदा होने के बाद ज्यादा दिन नौकरी नहीं की। बेटे को पालने-पढ़ाने-हर तरह लायक बनाने की खातिर, जवानी में ही सेवा निवृत्त हो गई। वह फिक्क से हँस दिया। सेवा से नहीं, घर के भीतर सेवा करने के लिए बाहर से निवृत्त हुई थी। बेटा बड़ा हुआ तो पोते-पोती की सेवा में जुट गई। बहू मान्या दफ्तरी ओहदे पर आसीन थी; जन सेवा छोड़ गृह सेवा करने वाली थी नहीं। भली थी उसकी बीवी या बेवकूफ, जो अच्छी-भली नौकरी छोड़, आदर्श माँ बनने के जंजाल में एक नहीं, दो पीढ़ियों तक फँसी रही? ध्रुव की शादी के बाद, नितिन ने कई बार तजवीज रखी कि जवान जोड़ा अपनी गृहस्थी अलग बसाए, अधेड़ दंपत्ति अलग। पर मान्या ने इतने स्नेहिल और विनीत भाव से मनुहार की, "प्लीज-प्लीज हमारे साथ रहिए, बच्चों को- जो एक के बाद एक तीन बरस में दो हो लिए - दादा दादी के

संग-साथ की सख्त जरूरत होती है, ऐसा आजकल की तमाम मनोवैज्ञानिक स्टडीज कहती हैं।" उसकी विनय और अभ्यर्थना के सामने उसकी भोली पत्नी ही नहीं, खुर्राट दफ्तरी बाबू खुद वह नतमस्तक हो रहा। यह न समझा कि वे चले गए तो मान्या को नौकरी छोड़नी पड़ेगी या बच्चों की देखभाल के लिए ऊँची तनख्वाह पर हाउसकीपर रखनी पड़ेगी। आजकल कुछ कम ऊँचे ओहदे वाले आया को "हाऊसकीपर" और ज्यादा ऊँचे ओहदे वाले "गवरनेस" कहते हैं। दादी को अलबत्ता ग्रेनी कहने भर से, बिला वेतन काम चल जाता है। अपने बचाव में वह कहे तो क्या। काफी दिनों तक उसे भागवती भली ही लगी थी, बेवकूफ नहीं, जब रोज नाश्ते में भरवाँ पराँठा या मूँग दाल का चीला गरमागरम बना कर खिलाती। ध्रुव भी तारीफ करता न अघाता। मान्या बिला तारीफ किए गटकती रहती, इस नसीहत के साथ कि वह सेहतमंद खाने की श्रेणी में नहीं आता, फिर भी... भली थी उसकी बीवी जो पलट कर नहीं कहा, "भलीमानुस, तुम नहीं न खाओ, मैं तुम्हारे नहीं, अपने पति-पुत्र के लिए बना रही हूँ। तुम्हारे पुत्र-पुत्री के लिए तो खैर मुफीद होगा ही, आखिर उनके खेलने-खाने के दिन हैं।"

यह बाजार का पित्जा और चाईनीज फ्राईड राईस, चिली प्रौन वगैरह भागवती के जीवन-निवृत्त होने के बाद आने शुरू हुए थे। जब तक वह थी, नई पीढ़ी की फरमाईश पर, टी.वी. के पाक कला कार्यक्रमों से सीख, चाउमीन, चॉपसुई, पास्ता, प्रौन करी और जने क्या-क्या घर पर बना दिया करती थी। बहू कहती थी, सारा दिन ईडियट बॉक्स के सामने बैठी रहती हैं, बच्चे स्कूल से आएँ तब बंद कर दिया करें, अदरवाइज उन्हें भी रोग लग जाएगा। भली सास उनके आने से पहले बंद किए रखती; बच्चे अपनी मर्जी से भद्दे-भोंडे रियेलिटी शो लगा कर बैठ जाते तो वह ईडियट कैसे कहती कि पाक कला सीखना, इससे तो कम ईडियोसी का काम था। जब-तब बहू-बेटा खूब विनीत भाव से कहते, "इनसे हिंदी में बोला कीजिए प्लीज वरना दे विल टॉक ओन्ली इन इंग्लिश... ऑल्वेज," इसलिए वह "इडियोसी" जैसे शब्द बोलने से परहेज रखती। यह दीगर है कि वह चाहे जितनी खुशनुमा हिंदुस्तानी बोलती, बच्चे जवाब अंग्रेजी में ही देते। उनके माँ-बाप भी उनसे फकत अंग्रेजी में बात करते, जैसे वे इंग्लिस्तान, न-न अमेरिका की पैदाइश हों; इंग्लिस्तान के दिन कब के लद गए। एक दिन भागवती ने तो नहीं, नितिन सोलंकी ने जरूर कहा था, "अक्ल के अंधों, तुम अपने बच्चों से ऐसे बात क्यों करते हो जैसे ये तुम्हारे अंग्रेज बॉस हों? सिर्फ नौकर और दादी ही रह गए हिंदी बोलने को, जैसे साले गोरे साहबों के खानसामा या साईस?"जवाब में बहू तो बहू, बेटा भी पीछे पड़ गया था कि ऐसी "लेन्गुएज" मत बोलिए, बच्चों पर बुरा असर पड़ता है। बेटे को क्या दोष दे, शादी होते ही तमाम जवान मर्दों की अक्ल घास

चरने चली जाती है और बीवी के जवान रहने तक, जो आजकल शौहर की निस्बत ज्यादा बरस रहती हैं, वापस नहीं लौटती। ध्रुव अकेले थोड़ा था। खुद नितिन की भी गई थी न, गार्डन या पार्क न सही, नुक्कड़ की बगिया में। बस उसकी जवान बीवी ज्यादा दिन जवान रही नहीं। समय से पहले रिटायर हुई, समय से पहले बुढ़ाई और समय से पहले निवृत्त हो गई।

उसका बनाया "चाऊ-साऊ" खा कर मान्या कहती तो थी, चाईनीज शेफ जैसा नहीं बना पर पैसे की बचत के चलते, समझौता करने को राजी हो जाती और न-न करते, काफी हिस्सा चट कर जाती। उसकी भली बीवी के लिए कम ही बचता पर उसकी सेहत के लिए ठीक भी तो नहीं था न; और नई चाल के व्यंजनों का उसे शौक भी नहीं था। उससे किसी ने पूछा नहीं था, वह भी भला पूछने की बात थी? औरों को छोड़ो, खुद उसने नहीं पूछा था। बचा-खुचा अपनी प्लेट में न डाल, उसे आदर्श माँ-दादी के साथ अच्छी पत्नी होने के सौभाग्य से वंचित क्यों कर करता!

भागवती के बाद अकेला पड़ गया तो ध्रुव के पास बना रहा, अपने निर्णय स्वयं लेने का अभ्यास तब तक मिट चुका था। ध्रुव के ऊँचे ओहदे की वजह से ही, सेवा निवृत्त नितिन सोलंकी, आई.आई.सी. से सटे भव्य लोदी गार्डन की बेंच पर बैठने का सौभाग्य पा सका। उसका बंगला पास ही काका नगर में था। उसके बेचारे साथी, डी.डी.ए. की एस.एफ.एस. या एम.आई.जी. कालोनी में बने छुट्टभइया पार्क की बेआराम बेंच पर बैठने को अभिशप्त थे। बेचारे वे थे या नितिन? वे पाँच-छह के गोल में, देश के बिगड़ते हालात और नई पीढ़ी की बढती उच्छृंखलता की निंदा करके वक्त जाया करते। लंबे-चौड़े-हवादार लोदी गार्डन में हरियाली और आरामदेह बेंच जरूर थीं पर नितिन को वक्त अकेले जाया करना पड़ता था। शनिवार-रविवार को झुंड के झुंड लोग पिकनिक मनाने आते पर नितिन की हलो का जवाब तक देना गवारा न करते। बाकी शाम, ट्रैक सूट में लैस जॉगर्स या वॉकर्स से बतियाने का सवाल ही नहीं उठता था। वॉक यानी सैर नितिन भी करता था, मद्धिम चाल चलतों से हाई-हलो हो जाती पर ऐसे लोग वहाँ कम आते थे। लोदी गार्डन के पास के बंगलों में सेवा निवृत्त बूढ़ों के रहने का चलन शायद नहीं था। ऊँचे ओहदेदार, माँ-बाप का क्या करते थे, वह जान नहीं पाया पर इतना जरूर जानता था कि बेटे के सदस्य होने पर, बाप आई.आई.सी. के लाउंज में नहीं बैठ सकता था।

यानी उसकी औकात आई.आई.सी. में बैठने की नहीं थी। दो-चार बार गया जरूर था। दुबारा दोस्तों की तलाश में निकले, हाल में सेवा निवृत्त हुए, एक जमाने के साथी बाबू बी.के. के साथ। अहमक नितिन सोलंकी ताउम्र बाबू बना रहा; चतुर सुजान बनवारी

कपूर, पदोन्नति पर पदोन्नति कर, सेल्स विभाग में अफसर बी.के. बन गया। उस मुकाम पर पहुँच कर उसे आई.आई.सी. की जीवन-पर्यंत सदस्यता मिल गई। सेल्स विभाग में जाने का निहितार्थ कौन नहीं समझता; मृदु-भाषी और चालाक होने के साथ, बी.के. दुनियादार भी था, अभिधा में कहें तो बेईमान।

पहली मर्तबा शनिवार की दुपहर, बी.के. से मुलाकात औचक हुई थी, जब नितिन लोदी गार्डन के गेट से अंदर घुस रहा था। "चलो, वहाँ बैठते हैं," बी.के. ने आई.आई.सी. की तरफ इशारा करके कहा था। चलते समय उसका फोन नंबर माँगा तो उसने ध्रुव के घर का नंबर दे दिया।

"यह तो लैंड लाइन है। मोबाइल नहीं है तेरे पास**?**" नंबर अपने मोबाइल में भरते हुए बी**.**के**.** ने पूछा था।

उसके न कहने पर हो-हो कर हँसते हुए कहा था, "मोबाइल तो आजकल भिखारियों तक के पास होता है। मेरे पास है न, कर लेना कभी भी। यहीं मिलेंगे।" हँसी के बावजूद, नितिन को बुरा लगा था; ईमानदार लोगों के साथ यही दिक्कत है, सच का बुरा मान जाते हैं।

ऐसा नहीं था कि नितिन धर्मराज युधिष्ठिर का अवतार था। यूँ धर्मराज कौन कम दुनियादार थे। क्या ठाठदार झूठ बोला था कुरुक्षेत्र में, न सच न झूठ, एकदम बी.के. की "सेल्स पिच" की तरह दुनियादार। सच यह था कि नितिन को ढंग से झूठ बोलना आता न था। कोशिश करता तो बनता काम बिगड़ जाता, बिगड़ा, बिगड़ा रहता ही। उससे बेहतर झूठ तो भोली भागवती बोल लेती थी, जो कटहल की तरी को चिकन तरी बतला कर परोस देती और किसी उल्लू के पट्ठे को जरा शक न होता। बजट में बचे पैसों से पकौड़े, टिकिया, दम आलू, कचौड़ी जैसे गैर-सेहतमंद देसी व्यंजन बना डालती, जिन्हें दुर-दुर करते, सब चट कर जाते। भागवती के लिए जरा-मरा ही बच पाता। क्या विडंबना थी कि सभी तरह के देसी-विदेशी गैर-सेहतमंद खाने से जबरन परहेज कर, हैल्थ फूड खा कर भागवती सबसे पहले परलोक सिधारी। नितिन समेत तमाम उल्लू के चरखे गलत खा कर भी अच्छे-भले हैं। बुरी बात, उसने अपने को दुत्कारा, गाली दे कर बात नहीं करनी चाहिए।

"देनी नहीं, सिर्फ खानी चाहिए, हा-हा," तुरंत बी.के. की आवाज आई। वह वहाँ नहीं था, आई.आई.सी. का जीवन पर्यंत सदस्य, हरामजादा लाउंज छोड़ उद्यान की बेंच पर क्यों बैठता? आवाज उसके भीतर से आई थी, आजकल जब-तब बी.के. भीतर घुस कर बोला करता है। अकेलेपन से निजात पाने का अच्छा तरीका है।

पहली मुलाकात के बाद, कुछ दिन तक नितिन बुरा माने इंतजार करता रहा कि बी.के. फोन करेगा। नहीं किया तो जब मय परिवार ध्रुव छुट्टी मनाने दिल्ली से बाहर था, एक कटखनी अकेली शाम, उसी ने बी.के. का नंबर मिलाया।

"आ जा कल ग्यारह बजे, मैं बाहर दरवाजे पर मिल जाऊँगा," उसने कहा।

"ग्यारह नहीं, शाम पाँच बजे, " नितिन ने कहा; अगले दिन ध्रुव को लौटना था। "दिन में कामवालियाँ आती-जाती रहती हैं, शाम को बच्चों के लौटने पर ही आ पाऊँगा।" बी.के मान गया था। नितिन ने थोड़ा झूठ बोला था। कामवाली रहती पूरा वक्त घर पर थी पर दुपहर को आराम करती थी। आमतौर पर वह मान्या-ध्रुव के घर लौटने पर, छह-सात बजे बाहर निकलता था। लोदी गार्डन आठ बजे तक खुला रहता था। पर चाहता तो पाँच बजे निकल सकता था।

"लाइफ मेंबर होने के बहुत फायदे हैं," बी.के. ने उसे समझाया था। "खुराफात में पड़ने पर सालाना सदस्य की सदस्यता आसानी से खत्म की जा सकती है, लाइफ मेंबर की करो तो सवाल उठना लाजिमी है कि लाइफ मेंबर बनाया क्या सोच कर था?"

इसीलिए आई.आई.सी. ज्यादातर बूढ़ों को जिंदगी भर के लिए सदस्य बनाता है, खुराफात में पड़ने का डर लगभग खत्म हो चुका होता है; ज्यादा जिंदा रहने का भी।"

"और इसीलिए, "नितिन ने हाजिरजवाबी में पहली बार बी.के. को मात दे कर कहा था, "वे आराम से खुराफात करते रह सकते हैं और जीते भी ज्यादा हैं।"

भागवती के गुजरने के बाद वह समझ गया था कि गैर-खुराफाती जन, सेहतमंद खाना खा कर भी कम जीते हैं। सोचा जाए तो भागवती थी भागवान, जल्दी सिधारी तो उसकी तरह पार्क की में बैठ या घूम कर अकेली शामें गुजारने की नौबत न आई। सोचा जाए, और करने को था क्या नितिन के पास, सोचने के सिवा, बेंच पर बूढ़े ज्यादा दीखते थे, बुढ़ियें निस्बतन कम। तर्कसम्मत था। चूंकि हिंदुस्तानी मर्द, औरत की तरह घर के काम में हाथ नहीं बंटा पाता, इसलिए बुढ़ापे में उसका मूल्य और कम हो जाता है। घर का काम, एकमात्र काम है, जिससे बंदा कभी रिटायर नहीं होता। अजब शै है हिंदुस्तानी मर्द। सारी उम्र औरत के भरोसे राज करके इतना निकम्मा हो जाता है कि बुढ़ापे में भरवाँ पराठा या मूँग दाल का चीला दूर, रोटी-दाल-पुलाव पका कर भी घर के लिए जरूरी नहीं बना रह सकता। हद से हद पोते-पोती की उँगली पकड़ या बच्चा गाड़ी ठेल, घुमाने ले जा सकता है या फल-तरकारी की खरीदारी कर सकता है। नितिन के पोते-पोती उतने छोटे नहीं थे कि घुमाने ले जाए जा सकें। घर पर रहते भी उनसे

बात कम होती थी। अब वे टी.वी. छोड़, कंप्यूटर पर यू ट्यूब में उत्तेजक फिल्में देखते हैं। माँ-बाप, चुगद, इतने ऊँचे ओहदों पर पहुँच लिए कि बच्चे क्या कर रहे हैं, देखने का वक्त नहीं है। परदे के पीछे खड़े रह कर एक बार उसने एक फिल्म के कुछ दृश्य देखे थे, पल भर को सोचा, ब्ल्यू फिल्म इसी को कहते हैं क्या? पर इतना गब्दू नहीं था। जल्द समझ गया कि उसके जमाने में इस खुराफात को सनसनीखेज भले मान भी लिया जाता, वाकई ब्ल्यू फिल्म वह नहीं थी। फिर भी वयस्क जरूर थी, कुछ ज्यादा ही वयस्क। स्कूली बच्चों के माकूल बिल्कुल नहीं। पर उसने कुछ कहा नहीं था। जानता था, बच्चे दुनियादारी में उससे इक्कीस थे। धर्मराज और बी.के. को मात दे, इस सफाई से आधा झूठ बोलते थे कि माँ-बाप शेखी बघारते फिरते थे कि हमारे बच्चे वेब पर खोज-खोज कर ऊँची तालीम के गुर सीख रहे हैं, देखना, बोर्ड में अठानवे-निनानवे फीसद नंबर लाएँगे। नहीं, वह नितिन के शब्द हैं, वे नाइन्टी एट-नाइंटी नाईन परसेंट कहते थे, रुतबेदार ठहरे।

दिन में वह कभी-कभार टी.वी. पर फिल्म या खबरें देख लेता पर उसकी अनेक कमियों में से एक यह थी कि उसे टी.वी. भाता नहीं था। खबरें अखबार में पढ़ना पसंद करता और फिल्म साथ बैठ कर देखना, सो बुद्धू बक्से के आगे बमुश्किल आधा घंटा गुजार पाता। किताबें खूब पढ़ता, पहले वक्त नहीं मिला था, पर जने क्यों चुगद उतने से खुश नहीं रह पाता। वैसे उतना चुगद भी नहीं था। मान्या ने कहा-भर था कि बुढ़ापे में सेहत के लिए लंबी सैर जरूरी है, वह तत्काल इशारा समझ, संग-साथ की चाह भीतर घोटे, बेटे-बहू को एकांत देने की खातिर, शामें पार्क में टहलते या बेंच पर बैठे गुजारने लगा था। शनिवार-रविवार को दिन का काफी वक्त भी। लोदी गार्डन में हरियाली के चलते गरमी-सरदी कम महसूस होती थी।

बी.के. से दूसरी मुलाकात, शाम पाँच बजे हुई तो सात बजे वह उठ खड़ा हुआ। बोला, "चलूँ वरना बस नहीं मिलेगी। और हाँ, जब मिलना हो मेरे मोबाइल पर मिस्ड कॉल दे देना, मैं अगले दिन पाँच बजे आई.आई.सी. के दरवाजे पर मिल जाऊँगा। इन्कमिंग फ्री है, तेरा पैसा भी नहीं लगेगा।"

घनचक्कर! समझता क्या है, उसे फोन करने की मनाही है! ध्रुव इतना बड़ा अफसर है, फोन के बिल सरकर भरती है। नितिन वापस लोदी गार्डन पहुँचा तो उड़ते से खयाल आए कि बी.के. बस में सफर क्यों करता है, उसके पास तो गाड़ी थी, वह भी एस्टीम। और दोनों बार मिलने पर एक चाय मँगा, दो प्यालों में उड़ेल, टरका दिया था, कुछ खिलाया न था। खासा खुला हाथ रखने वाला, सेवा निवृत्त बुढ़ऊ इतना कंजूस हो लिया! खाने को घर पहुँच, भूसा-छाप कुछ खा ही लेगा पर आई.आई.सी. लाउंज के

बाहर कतार से सजे पेस्ट्री-पैटी देख, जी ललचा उठा था। बुरा हो, न-न भला हो, भागवती का, तरह तरह के व्यंजन पकाना सीख, अला-बला खाने का स्वाद पैदा कर गई। अपने लिए खरीदने लायक पैसा था उसके पास पर कंबख्तों ने पट्टा लगा रखा था, सिर्फ सदस्यों के लिए। अगली बार बी.के. से कहेगा, वह साइन कर दे, पैसे नितिन दे देगा। पर जानता था कह नहीं पाएगा। ऐसे ही थोड़ा न, पूरी उम्र बाबूगिरी करते गुजारी थी।

कुछ मुलाकातें और हुई थी।

थोड़े दिन बाद, बी.के. ने कहा था, "तू खुशकिस्मत है जो तेरी बहू दफ्तर में काम करती है। दिन भर आराम से पाँव पसार घर में पड़ा रह सकता है, कूलर-शूलर चला कर। मेरी बहू घर से काम करती है, सो सारा दिन घर बैठी, गाहक निबटाती है।"

"हैं!" उसे ठिठोली सूझी थी, "गाहक! चकला चलाती है क्या?" वह फुसफुसाया था।

बी.के. ठहाका मार हँस दिया था। कम ईमानदार लोगों की यही सिफ्त है, जिंदादिल होते हैं, मजाक का बुरा नहीं मानते। कहा था, "नहीं यार, उदारवादी युग की देन है। घर का नहीं, घर से काम करो। औरतें उसका ज्यादा फायदा उठाती हैं। बहुत से पेशे हैं, मेरी बहू डाईटिशयन है। मतलब समझते हो, गाहकों को घर बुला, सलाह देती है, क्या खाएँ क्या नहीं, जिससे मोटापा घटा कर, तंदुरुस्त, छरहरे और जवान बने रहें।"

"पर तेरी बहू तो खासी मोटी तंदुरुस्त है।"

"यही तो मौज है। सलाह देनी होती है, आजमाइश नहीं करनी होती। मोटी फीस वसूल कर घर से काम करने में घर का काम करने को वक्त नहीं मिलता। खुद बाहर से मँगा कर खाते हैं, दूसरों को मट्ठा पीने की सलाह देते हैं।"

"घर पर बना कर?"

"नहीं यार, बाहर से मँगा कर। हैल्थ फूड की अब पूरी की पूरी इंडस्ट्री है।"

"तेरी मौज है, खाया कर दबा कर जंक! मुझे तो रोज भूसा खाना पड़ता है।"

"गाहकों के आने पर उसे मेरा घर रहना पसंद नहीं। इसीलिए सुबह नाश्ते के बाद से यहाँ आई.आई.सी. में आकर बैठ जाता हूँ।"

"क्यों, तू उन्हें आँख मारता है?"

"मारता तो एतराज न होता। पर... मैं... काफी बूढ़ा दिखता हूँ..." उसकी आवाज धीमी पड़ती गुम हो गई।

नितिन ने गौर किया, पहले ध्यान नहीं दिया था, उसकी निस्बत बी.के. ज्यादा बूढ़ा दीखता था। शायद मान्या के खिलाए भूसे की मेहरबानी हो! नहीं, वह तो कुछ दिनों से मिलना शुरू हुआ है। बरसों भागवती के हाथ के तरमाल पर जिया है।

"हम ससुरे बूढ़े नहीं तो क्या होंगे।"

"वह जवान बनाए रखने का दावा करती है। उसके पेशे में..."

नितिन हँसी न रोक पाया, बोला, "ससुरों को भी?"

"यह उदारवाद का जमाना है," एक ठसकेदार आवाज आई, "हम सब ऋणी हैं राजीव गांधी के।"

आवाज बी.के. की नहीं थी, पास की मेज से आई थी।

"हैं!" नितिन ने हँस कर कहा, "उदारवाद भी जवानी पसंद है?"

बी.के. न हँसा, न मजाकिया जवाब हाजिर किया। खसखसी आवाज में मिमियाया, "हाँ हम सब ऋणी हैं।"

जिंदादिली चुक गई क्या... तो ईमानदारी जग गई होगी?

नितिन ने ही कहा, "मुँह क्यों लटका रखा है? रोज इतनी ठाठदार जगह खाता है और देख यहाँ हैल्थ फूड भी मिलता है।"

"यहाँ खाने की मेरी औकात नहीं है," वह फुसफुसाया।

हद हो गई! उसकी इमानदारी जग गई या धर्मराजी झूठ बोल रहा था?

"क्या बक रहा है यार, तेरे पास भतेरा पैसा था।" उसके गृहप्रवेश में भागवती जैसी सात्विक औरत भी रश्क से कसमसा उठी थी, "कितना बढ़िया मकान बनवाया था।"

"कर्ज ले कर।"

"वह तो सभी लेते हैं।"

"राजीव गांधी ने बाजार का उदारीकरण न किया होता तो हम इतने उद्योग-धंधे न लगा पाते थे?" बराबर से आवाज फिर गूँजी।

"सुना?" नितिन ने कहा।

"हाँ। पहले सिर्फ सटोरिए दिवालिया होते थे, अब हर आदमी को यह सुविधा है," बी.के. बुदबुदाया।

"चलें?" नितिन ने इस बिन नशे बड़बड़ाहट से बचने-बचाने को कहा।

"नहीं सुन ले। मैंने यह सोच कर मकान बनवाया था कि जब तक कर्ज चुकता होने तक उसे किराए पर चढ़ा देंगे, फिर उसमें रहेंगे। पर बच्चे नहीं माने। कहने लगे लोन का क्या है, ई.एम.आई देते रहेंगे, सब तो कमा रहे हैं। कमाया सबने, माहवारी किस्त दी सिर्फ मैंने। एक लड़का अमेरिका चला गया, उसका हमारी किसी बात से सरोकार न रहा। बेटी की शादी ज्यादा पैसेवालों से कर दी, समझ कि लुट लिया। बचा अमित। उसकी सलाह पर कई बिजनेस किए, लोन मिलना इस कदर आसान था कि पाँव चादर से बाहर क्या पसारे, चादर दिखनी बंद हो गई। जितनी आसानी से कर्ज दिया था, उतनी ही आसानी से साहूकार अदायगी में ओढ़ना-बिछौना उठा ले गए। जो कतरन बचीं, बीमारी में खर्च हो गईं। मैं दिवालिया हो गया। मकान बच रहा क्योंकि पहले ही अमित ने खरीद लिया था। अब मैं हूँ और आई.आई.सी. की सदस्यता। जिस-तिस की मेज पर बैठ जाता हूँ, एकाध प्याले चाय का जुगाड़ हो जाता है।"

"बीमारी क्या हुई थी?"

"कैंसर। अब ठीक हूँ।"

"उदारीकरण का करिश्मा है कि आम हिंदुस्तानी की औसत उम्र इतनी बढ़ गई। हर तरह की देसी-विदेशी चिकित्सा उपलब्ध है," बराबर की मेज चिहुँकी।

"भूतपूर्व मंत्री हैं," बी.के. ने मरी आवाज में कहा, "कौन जाने कब भूत भविष्य बन जाए, मस्का लगाने की आदत बनाए रखनी पड़ती है।"

नितिन की समझ में नहीं आया क्या कहे। तभी बैरा बिल ले आया। कुल नौ रुपए का था। सुस्त भाव से बी.के. ने हस्ताक्षर कर दिए। बैरा चला गया तो नितिन ने बी.के. का हाथ थाम कर कहा, "बुरा न माने तो एक बात कहूँ। पैसे मुझे देने दे। साइन तू कर पर..." जेब से दस का नोट निकाल उसे थमाते हुए जोड़ा, "हम मिलते रहेंगे, मुझे

गरमी-सरदी बगीचे में बैठने में कष्ट होता है। यहाँ ए.सी. है। और सुन, एक वैज पैटी मँगा ले, शेयर कर लेंगे।"

बी.के. सहसा कम बूढ़ा लगने लगा। बोला, "कितना इंतजार करवाया यार तूने... अक्ल की बात सुनाने में।"